पाठ्यक्रम - १५

१५.अ जैन जीव विज्ञान-मनुष्य जीव

मनुष्य गति नामकर्म के उदय से ''मैं मनुष्य हूँ'' ऐसा अनुभव करते हैं वे जीव मनुष्य कहलाते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा मनुष्य दो प्रकार के हैं। कर्मभूमिज मनुष्य और भोगभूमिज मनुष्य।

१. कर्मभूमिज मनुष्य - जो मनुष्य कर्मभूमि में उत्पन्न होते है, शुभ-अशुभ कर्म करते हुए सद्गति-दुर्गति को प्राप्त होते हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, सेवा और वाणिज्य रूप षट्कर्मों के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। जो जीव कर्म काट कर मोक्ष सुख को प्राप्त कर सकते हैं, कर्मभूमिज मनुष्य कहलाते हैं।

२. भोगभूमिज मनुष्य - जो मनुष्य दस प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त सामग्री का भोग करते हैं। सदा भोगों में लीन सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं तथा मरणकर नियम से देवगति में ही जन्म लेते हैं। भोग भूमिज मनुष्य कहलाते हैं।

आर्य व म्लेच्छ के भेद से भी मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। जो गुणों से सहित हों अथवा गुणवान लोग जिनकी सेवा करें उन्हें आर्य कहते हैं। इसके विपरीत, गुणों से रहित, धर्महीन आचरण करने वाले, निर्लज्ज वचन बोलने वाले म्लेच्छ होते हैं।

कर्मभूमिज मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक करोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। भोग भूमिज मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य एवं जघन्य आयु एक पूर्व कोटि है।

भद्र मिथ्यात्व, विनीत स्वभाव, अल्प आरम्भ अल्प परिग्रह के परिणाम, सरल व्यवहार, हिंसादिक दुष्ट कार्यों से निवृत्ति, स्वागत तत्परता, कम बोलना, ईर्षारहित परिणाम, अल्प संक्लेश, देवता तथा अतिथि पूजा में रुचि, दान शीलता, कापोत पीत लेश्या रूप परिणाम, मरण काल में संक्लेश रूप परिणति का नहीं होना आदि मनुष्य आयु के आस्रव तथा मनुष्य गति में ले जाने के कारण हैं।

मनवांछित वस्तु को देने वाले कल्पवृक्ष कहलाते हैं। वे दस प्रकार के होते हैं-

१. **पानाङ्ग** - मधुर, सुस्वादु, छः रसों से युक्त बत्तीस प्रकार के पेय को दिया करते हैं।
२. **तूर्याङ्ग** - अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र देने वाले होते हैं।
३. **भूषणाङ्ग** - कंगन, कटिसूत्र, हार, मुकुट आदि आभूषण प्रदान करते हैं।
४. **वस्त्राङ्ग** - अच्छी किस्म (सुपर क्वालिटी) के वस्त्र देने वाले हैं।
५. **भोजनाङ्ग** - अनेक रसों से युक्त अनेक व्यञ्जनों को प्रदान करते हैं।
६. **आलयाङ्ग** - रमणीय दिव्य भवन प्रदान करते हैं।
७. **दीपाङ्ग** - प्रकाश देने वाले होते हैं।
८. **भाजनाङ्ग** - सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित भाजन और आसनादि प्रदान करते हैं।
९. **मालाङ्ग** - अच्छी-अच्छी पुष्पों की माला प्रदान करते हैं।
१०. **तेजाङ्ग** - मध्य दिन के करोड़ों सूर्य से भी अधिक प्रकाश देने वाले इनके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र का प्रकाश कांतिहीन हो जाता है।

पानाङ्ग जाति के कल्पवृक्ष को मद्याङ्ग भी कहते हैं। ये अमृत के समान मीठे रस देते हैं। वास्तव में ये वृक्षों का एक प्रकार का रस है, जिन्हें भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले आर्य पुरुष सेवन करते हैं, किन्तु यहाँ पर अर्थात् कर्मभूमि में जो मद्य पायी लोग जिस मद्य का पान करते हैं, वह नशीला होता है और अन्तःकरण को मोहित करने वाला है, इसलिए आर्य पुरुषों के लिए सर्वथा त्याज्य है।

सुपात्र को आहार दान देते समय की जाने वाली नवधा भक्ति

१. पड़गाहन २. उच्चासन ३. पाद-प्रक्षालन ४. पूजन ५. नमोस्तु ६. मन शुद्धि ७. वचन शुद्धि ८. काय शुद्धि ९. आहार-जल शुद्धि

पाठ्यक्रम - १५

१५.ब जैन जीव विज्ञान-देव जीव

जो नित्य अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व (वशित्व), सकाम रूपित्व इन आठ गुणों से सहित क्रीड़ा करते हैं। जिनका शरीर सुंदर, प्रकाशमान वैक्रियक होता है, वे देव कहलाते हैं।

भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव एवं वैमानिक देव के भेद से देव चार प्रकार के होते हैं।
जो भवन में रहते हैं, उन्हें भवनवासी कहते हैं। जो पहाड़, गुफा, द्वीप, समुद्र, मंदिर आदि में विचरण करते रहते हैं वे व्यन्तर कहलाते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व तारों में रहने वाले ज्योतिर्मय देव ज्योतिषी कहलाते हैं। जो ऊर्ध्वलोक के विमानों में रहते हैं वैमानिक कहलाते हैं। सोलह स्वर्ग तक के देव कल्पोपपन्न एवं उससे ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

अणिमा आदि आठ गुणों का स्वरूप -

१. अणिमा - अपने शरीर को अणु बराबर छोटा करने की शक्ति अर्थात् इतना छोटा शरीर बनाना कि सुई के छेद में से निकल जावे।
२. महिमा - अपने शरीर को मेरु प्रमाण बड़ा करने की शक्ति अर्थात् अपने शरीर को मेरु अथवा हिमालय बराबर बड़ा बना लेना।
३. लघिमा - रुई के समान शरीर को हल्का बना लेने की क्षमता अर्थात् मकड़ी के तंतु पर पैर रखने पर भी वह न टूटे।
४. गरिमा - बहुत भारी अर्थात् करोड़ों व्यक्ति मिलकर भी जिसे न उठा पाएँ, इतना भारी, वजनदार शरीर बनाने की शक्ति।
5. प्राप्ति - एक स्थान पर बैठे-बैठे ही दूर स्थित पदार्थों का स्पर्श कर लेना, उठा लेने की क्षमता। जैसे यहाँ बैठे-बैठे ही हिमालय के शिखर को छू लेना इत्यादि।
6. प्राकाम्य - जल में भूमि की तरह गमन करना और भूमि में जल की तरह डुबकी लगा लेना।
7. ईशित्व - सब जीवों तथा ग्राम, नगर एवं खेड़े आदि पर प्रभुत्व की क्षमता।
8. सकाम रूपित्व - बिन बाधा के पहाड़ आदि के बीच में से गमन करना, अदृश्य हो जाना, गाय, सिंह आदि अनेक प्रकार के रूप बनाने की क्षमता।

० देवों का जन्म उपपाद शय्या पर होता है। जन्म लेते ही सोलह वर्ष के युवक की तरह सुंदर शरीर होता है, उन्हें बुढ़ापा नहीं आता, कोई रोग नहीं होता, अकाल मरण नहीं होता। देवों का शरीर मल-मूत्र, सप्तधातु, पसीना, निगोदिया जीवों से रहित होता है। देवों के बाल नहीं होते, पलकें नहीं झपकतीं, शरीर की परछाई नहीं पड़ती। संहनन रहित, समचतुरस्त्र संस्थान वाला शरीर होता है। प्रत्येक देव की कम से कम 32 सुंदर देवांगनाएँ होती हैं।

० देव पलक झपकते ही कोशों की दूरी तय कर लेते हैं। देवों के शरीर की ऊँचाई अधिकतम पच्चीस धनुष तथा जघन्य एक हाथ है।

० देवो में जघन्य आयु दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट आयु तैतीस सागर प्रमाण होती है। एक सागर की आयु वाला देव १ हजार वर्ष बाद आहार ग्रहण करता है अर्थात् भूख लगते ही उनके कण्ठ में अमृत झर जाता है तथा वही देव १५ दिन के बाद एक बार श्वासोच्छवास ग्रहण करता है। देवियाँ दूसरे स्वर्ग तक ही जन्म लेती हैं, नियोगि देव उन्हें सोलहवें स्वर्ग तक ले जाते हैं।

सदाचारी मित्रों की संगति आयतन सेवा, सद्धर्म श्रवण, स्वगौरव दर्शन, निर्दोष प्रोषधोपवास, तप की भावना, बहुश्रुतत्व, आगमपरता, कषाय निग्रह, पात्रदान, पीत-पद्म लेश्या परिणाम, मरण काल में धर्म ध्यान रूप परिणति आदि सौधर्मादि स्वर्ग की आयु के बंध के कारण हैं।

० सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से युक्त देव कर्मक्षय के निमित्त नित्य ही अत्यधिक भक्ति से जिनेन्द्र - प्रतिमाओं की पूजा करते हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि देवों से सम्बोधित किए गए मिथ्यादृष्टि देव भी कुल देवता मानकर जिनेन्द्र प्रतिमाओं की नित्य ही नाना प्रकार से पूजा करते हैं।

बुलंदियों की उड़ान में हो तो थोड़ा सब्र करना।
परिन्दे बताते हैं कि आकाश में ठिकाने नहीं हुआ करते ।।

पाठ्यक्रम - १५

१५.स जैन इतिहास - भगवान महावीर की परम्परा

जैनाचार्यों के अनुसार इस भरत क्षेत्र में उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के छह कालों में वृद्धि एवं ह्रास के अनुसार परिवर्तन देखा जाता है। प्रत्येक दुषमा-सुषमा काल में धर्म तीर्थं के प्रवर्तक चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का शासन काल चल रहा है। भ. महावीर ने ३० वर्ष की आयु में दिगम्बरी दीक्षा धारण की एवं १२ वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद ३० वर्ष तक समवशरण की विभूति से सहित, इस भारत भूमि के ग्राम, नगरों में जिनधर्म का प्रचार करते हुए विहार किया एवं अन्त में उन्होंने पावापुर के उद्यान से मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर के निर्वाण उपरांत उसी दिन सायंकाल में भगवान के प्रधान गणधर गौतम स्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वे चतुर्विध संघ के नायक बने, १२ वर्ष तक संघ गौतम केवली के नेतृत्व में रहा। पश्चात् सुधर्माचार्य को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और १२ वर्ष तक संघ सुधर्म केवली के नेतृत्व में रहा। इसके बाद जम्बूस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ३९ वर्षों तक संघ का नेतृत्व करते हुए अंत में मथुरा चौरासी से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। इनके पश्चात् क्रमशः विष्णुकुमार, नन्दि पुत्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए जिनके नेतृत्व में संघ चला। इन पांचों के काल का योग १०० वर्ष होता है इन्हें पूर्ण श्रुतज्ञान था। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु की मृत्यु के उपरांत साधुओं में मन भेद, संघ भेद एवं गणभेद आदि प्रारंभ हो गए।

भद्रबाहु आचार्य के प्रमुख शिष्यों में अंतिम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य थे। एक बार भद्रबाहु मुनि जब आहार चर्या के लिए नगर की ओर गए, तब वहाँ एक बालक जो कि झूले में लेटा हुआ था, जोर-जोर से रोने लगा और चले जाओ, चले जाओ (बा बाबा, बा बाबा) शब्द करने लगा। तब भद्रबाहु मुनि अन्तराय मानकर वापस वन की ओर चले गए। तथा समस्त मुनियों को इकट्ठा करके उनसे कहा -निमित्त ज्ञान से ऐसा प्रतीत होता है कि पाटलिपुत्र में बारह वर्षों का भीषण अकाल पड़ने वाला है अतः हम सभी श्रमण संस्कृति एवं धर्म की रक्षा हेतु इस क्षेत्र से अन्यत्र देश की ओर विहार करें। तब उस नगर के श्रावकों ने साधुओं से निवेदन किया कि हे मुनिवर! हमारे गोदाम धन-धान्य से भरे पड़े हैं तेल गुड़ आदि की कोई कमी नहीं है, बारह वर्ष यूं ही चुटकी बजाते निकल जाएँगे आप लोग निश्चिंत होकर यहीं रहें अन्यत्र न जावें। श्रावकों के बार-बार आग्रह करने पर भी महामुनि भद्रबाहु ने महाव्रतों के अत्यन्त भंग को जानते हुए विशाखाचार्य (चन्द्रगुप्त) के साथ १२,००० मुनियों के संघ को लेकर दक्षिण प्रान्त की ओर विहार किया। किन्तु यश की इच्छा करने वाले कितने ही साधु (स्थूलभद्र, स्थूलाचार्य, रामल्य आदि) श्रावकों के आग्रह को मानते हुए पाटलिपुत्र में ही रुक गए। कुछ समय व्यतीत होते ही अकाल पड़ने लगा। बारह वर्षीय भीषण दुर्भिक्ष के दौरान लोग अभक्ष्य भक्षण करने लगे, किसी तरह से भूख मिटाना ही उनका लक्ष्य रहा, प्रायः सभी धर्म-कर्म से रहित क्रूरता पूर्ण आचरण करने लगे। उनमें भी कुछ श्रेष्ठी श्रावक अपने व्रतों का पालन करते हुए मुनियों को आहार दान आदि दे रहे थे। कितने ही दिन व्यतीत होने पर एक दिन एक मुनिराज आहार कर लौट रहे थे तब किसी भूखे व्यक्ति ने मुनिराज के पेट को तीव्र पैने नखों से भेद/फाड़ डाला और उनके पेट में स्थित भोजन को जल्दी-जल्दी खा डाला। इस उदर विदारण से मुनि का तत्कालमरण हो गया। इस विषमता को देख श्रावकों ने मुनियों से निवेदन किया हे स्वामी! यह काल अत्यन्त भीषण है अथवा कहिये दूसरा यम ही आया है इसलिए अनुग्रह कर हम लोगों के वचनों को स्वीकार कीजिए और वन को छोड़कर समस्त मुनिराज ग्रामों के बीच में निवास करें। श्रावकों की प्रार्थना साधुओं ने स्वीकार की, श्रावक लोग भी उसी समय समस्त संघ को उत्सव पूर्वक नगर में लिवा लाए और धर्मशाला आदि स्थानों में ठहराए। दुर्भिक्ष दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा, कई वर्ष व्यतीत होने पर जब मुनि - संघ आहार-चर्या को निकले तो दीन-हीन लोग उनके साथ हो गए, करुणामय वचन बोलने लगे '' हमें देओ-देओ। तब कितने ही लोग क्रोधित होकर उन कृश काय लोगों को मारने लगे। दयालु मुनिराज ऐसे लोगो को तथा गृह के द्वार बंद

देखकर अपने लिए अंतराय समझ स्व-स्थान पर लौट गए। तब श्रावक भक्ति-भाव से अत्यन्त व्याकुल होकर गुरु के पास गए और प्रार्थना की - सारी पृथ्वी दीन लोगों से पूर्ण हो रही है और उन्हीं के भय से कोई क्षण मात्र के लिए भी घर के किवाड़ नहीं खोलते हैं तथा इसी कारण हम लोग रात्रि में ही भोजन बनाने लगे हैं। अत: आप से निवेदन है कि आप लोग रात्रि के समय ही हमारे गृहों से पात्रो में भोजन ले जाए और दिन होने पर वहीं आहार करें। परिस्थिति को समझते हुए उन्होंने निवेदन स्वीकार किया तथा तुम्बी पात्र में भोजन लाने लगे। कुत्ते आदि के भय से लकड़ी रखने लगे। एक दिन क्षीण काय साधु के हाथ में पात्र और लाठी देखकर यशोभद्र सेठ की गर्भवती पत्नी घबरा गई जिससे उसका गर्भ गिर गया। यह विषम रूप लोगों के भय का कारण है इसलिए कन्धे पर वस्त्र धारण करें, जब तक सुभिक्ष न आ जाए ऐसा करें फिर तपश्चरण धारण करें, ऐसा निवेदन भी साधुओं ने स्वीकार किया और धीरे-धीरे शिथिलाचार बढ़ता गया। बाद में जब सुभिक्ष प्रारम्भ हुआ तब विशाखाचार्य सब मुनियों को लेकर उत्तर भारत आए। इन साधुओं को देखकर प्रतिनमोस्तु नहीं किया। कुछ साधुओं ने प्रायश्चित लेकर पुन: सम्यक् मार्ग प्रारंभ किया किन्तु कुछ हठ के वशीभूत, कैसे अब कठिन चर्या स्वीकारें ऐसा विचार कर उसी मार्ग का अनुकरण करने लगे वे अर्धफालक कहलाए। आगे एक रानी के आग्रह पर उन्होंने श्वेत वस्त्र भी अंगीकार कर लिए और तभी से श्वेताम्बर मत भी प्रसिद्ध हुआ। यह मत महाराजा विक्रम की मृत्यु के 136 वर्ष बाद उत्पन्न हुआ, इस प्रकार भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् यह विशुद्ध जैन धर्म दो संप्रदायो में बट गया। बाद में श्वेताम्बरों द्वारा अनेक नवीन साहित्य की रचना की गई जिनमें अनेक दिगम्बर मान्यताओं के विरुद्ध बातें लिखी हैं जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं-

श्वेताम्बर मान्यता	दिगम्बर मान्यता
१. केवली कवलाहार (भोजन) करते हैं।	१. नहीं करते हैं।
२. केवली को नीहार (शौच) होता है।	२. नहीं होता है।
३. सवस्त्र मुक्ति होती है।	३. दिगम्बर होना अनिवार्य
४. स्त्री उसी भव से मुक्ति प्राप्त कर सकती है।	४. नहीं कर सकती
५. गृहस्थ भेष में केवलज्ञान संभव।	५. असंभव
६. वस्त्राभूषण से सुसज्जित प्रतिमा पूज्य है।	६. दिगम्बर प्रतिमा ही पूज्य है।
७. तीर्थंकर मल्लिनाथ का स्त्री होना	७. स्त्री तीर्थंकर नहीं हो सकती।
८. महावीर का गर्भ परिवर्तन, विवाह एवं कन्या का जन्म	८. कल्पना है ऐसा नहीं हुआ
९. मुनिगण दिन में अनेक बार भोजन कर सकते	९. एक बार ही करपात्र में
१०. ग्यारह अंग की मौजूदगी।	१०. अंगज्ञान का लोप हुआ।

विशेष रूप से मतभेद आदि जानने हेतु श्वेताम्बर विद्वान श्री बेचरदास जी दोशी द्वारा रचित ''जैन साहित्य में विकार'' तथा पं. अजित कुमार शास्त्री द्वारा रचित ''श्वेताम्बर मत समीक्षा'' पुस्तक पढ़ना चाहिए। आगे दक्षिण प्रान्त से लौटने के बाद दिगम्बर मुनियों का संघ अर्हद्बली आचार्य के नेतृत्व में रहा। पंचवर्षीय युग प्रतिक्रमण के अवसर पर उन्होंने दक्षिण देशस्थ महिमानगर जिला-सतारा में यति-सम्मेलन की योजना बनाई। जिसमें १००-१०० योजन तक के यति आकर सम्मिलित हुए। उस समय उन्होंने महसूस किया कि काल के प्रभाव से वीतरागियों में भी अपने-अपने संघ तथा शिष्यों के प्रति कुछ पक्षपात जाग्रत हो चुका है। यह पक्ष आगे जाकर संघ की क्षति का कारण न बन जाए इस उद्देश्य से उन्होंने अखण्ड दिगम्बर संघ को नन्दिसंघ आदि अनेक अवान्तर संघों में विभाजित कर दिया। आगे अनेक संघ भेद, जैनाभास आदि होते रहे जिनका वर्णन विस्तृत होने से यहाँ नहीं दिया जा रहा है। विशेष जानने के इच्छुक ऐतिहासिक ग्रंथ अथवा जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग १ के इतिहास एवं परिशिष्ट को पढ़ सकते हैं। दिगम्बर संप्रदाय के कुछ प्रचलित मतों का संक्षिप्त परिचय यहाँ देते हैं।

राष्ट्रगान में जैन - राष्ट्रगान 'जन-गण-मन' की दूसरी पंक्ति में 'जैन' शब्द को भारत में प्रचलित अन्य छह मुख्य धर्मों की भाँति लिखा गया है।

'अहरह तव आह्वान प्रचारित, शुनि तव उदार वाणी
हिन्दु, बौद्ध, सिख, 'जैन', पारसिक, मुसलमान, ख्रिसतानी'.... जय, जय, जय, जय हे।।

भट्टारक पंथ

भट्टारक शब्द पूर्व में जैन धर्म के प्रभावक उन आचार्यों के लिए प्रयुक्त होता था, जिन्होंने अनेक ग्रंथ लिखकर दिगम्बर जैन शासन की प्रभावना की तथापि भट्टारक शब्द कालान्तर में शिथिलाचारी दिगम्बर मुनियों के लिए प्रयुक्त होते-होते, वस्त्र-धनादि परिग्रह सहित, मठाधीश, सुविधाभोगी किन्तु पिच्छीधारी एक विशेष वर्ग के लिए रूढ़ हो गया। चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली की गद्दी से प्रारंभ होकर धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत में भट्टारकों की गद्दियाँ स्थापित हो गईं। वे भट्टारक प्राय: आगमज्ञान से हीन, मंत्र-तंत्रादि में निपुण होने से प्रभावक रहे। उत्तर भारत में श्रावकों की जन-चेतना के कारण भट्टारकों की परंपरा प्राय: समाप्त हो गई तथापि दक्षिण भारत में यह परम्परा आज भी जीवित है। भट्टारक प्रथा मुनियों में बढ़े हुए शिथिलाचार का ही रूप है इसे आगम में कही भी स्वीकार नहीं किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने जैन दर्शन में तीन ही लिंग माने है - १ जिनलिंग (दिगम्बर श्रमण का) २ उत्कृष्ट श्रावक (एलक/छुल्लक का), ३. आर्यिका का। इसके अलावा चौथा कोई लिंग नहीं है। भट्टारकों का पिच्छी रखना भी उचित नहीं है। भट्टारकों की इस परंपरा में सुधार अपेक्षित है। इस हेतु प. नाथूराम जी प्रेमी द्वारा सन् १९१२ में लिखी पुस्तक ''भट्टारक'' पठनीय है।

तेरापंथ - बीसपंथ

संवत् १७०० में कामा (मथुरा) में भट्टारकों के विरुद्ध गृहस्थ जैनों का एक दल उठ खड़ा हुआ। उस दल ने घोषणा कर दी कि पंचमहाव्रत धारी, नग्न दिगम्बर साधु ही जैन गुरु हो सकता है, वस्त्रादि परिग्रह सहित भट्टारक नहीं। यह विद्रोह उत्तर भारत में प्राय: सर्वत्र फैल गया और वहाँ सब स्थानों पर भट्टारकों की अमान्यता तेजी से फैलने लगी। कुछ लोग उस समय भी भट्टारकों के अनुयायी बने रहे जिन्होंने भट्टारकों को गुरु मानने का निषेध किया वे तेरापंथी कहलाए। मुख्य रूप से वर्तमान में पूजन पद्धति को लेकर दोनों में भिन्नता है विशेष कुछ नहीं। तेरह पन्थ के जन्मदाता प. बनारसी दास जी माने जाते है।

तारण - पंथ

भारतीय इतिहास में सोलहवीं शताब्दी को प्रशस्त नहीं माना गया है इस समय भारत में मुगल साम्राज्य छाया हुआ था। हिन्दू व जैन धर्म का दमन हो रहा था तथा जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कराया जा रहा था, मंदिर और मूर्तियाँ तोड़ी जा रही थीं। तब उस समय संत तारण-तरण नाम के एक व्यक्ति ने इस पंथ को जन्म दिया। जिसमें मूर्ति-पूजा का निषेध करते हुए अध्यात्म का उपदेश व जिनवाणी की वंदन पूजा का मूल उपदेश दिया गया है। इस पंथ से प्रभावित होकर अनेक जैनेत्तरों ने भी इस पंथ को स्वीकार किया। संत तारण जी ने १४ ग्रन्थों की रचना की इसके अनुयायी इन ग्रंथों की व अन्य आचार्य प्रणीत ग्रन्थों को देव स्थान वेदी पर विराजमान कर उनकी पूजा करते हैं। संत तारण का प्रभाव मध्य भारत के कुछ ही क्षेत्रो तक सीमित रहा। जहाँ इनके अनुयायी आज भी हैं। इनकी संख्या दिगम्बरों की अपेक्षा अत्यल्प है।

संस्मरण - गिरना-उठना

गिरना-उठना, उठना-गिरना, यह क्रम बच्चों के जीवन में रहता ही है। इससे बच्चे जहाँ एक ओर दु:खी तो अवश्य होते हैं परन्तु मजबूत बनना, उनका दूसरी ओर का पक्ष मान सकते हैं। उठने के लिए गिरना अनिवार्य है क्योंकि गिरना तो स्वभाव है परन्तु उठना पुरुषार्थ पर आधारित है।

बात उस समय की है जब मल्लप्पाजी अपने परिवार सहित गोमटेश्वर स्वामी की तीर्थ वन्दना को गए। उनके साथ उस समय डेढ़ वर्ष के नन्हें पीलू (विद्याधर) भी थे। बाहुबली भगवान् के दर्शनोपरान्त पति-पत्नी पल भर को विश्राम को क्या ठहरे? उसी में बच्चे के रोने की आवाज आयी। दोनों पागलों की तरह भागे एवं देखा तो पीलू 10 सीढ़ियाँ लुढ़ककर नीचे जा पहुँचे थे। माँ ने दौड़कर पीलू को उठाया, अपने सीने से लगाया एवं देखा कहीं चोट तो नहीं आई। माता-पिता ने अपने बेटे को सकुशल देख चैन की साँस ली।

समय गुजरा, पीलू युवा हो गए। एक दिन माता-पिता ने विद्याधर को बचपन की घटना सुनाई। जिसे सुनकर सबको आश्चर्य अवश्य हुआ परन्तु हैरानी नहीं क्योंकि ऐसा होता ही रहता है। तब माता-पिता ने शिक्षा दी कि बेटा अब कभी राह पर फिसलना नहीं, गिरना नहीं। जिसे विद्या ने शिरोधार्य कर संकल्प किया ऊपर चढ़ने का। इसी भावना वशात् वे संयम पथ पर अग्रसर होकर, दस धर्मों का सहारा लेकर एवं दसधर्मों का ध्यान करके ऊपर उठ रहे हैं। वे इतने ऊपर उठना चाहते हैं, जिससे ऊँचा कुछ नहीं... कुछ भी नहीं।

भक्तामर स्तोत्र

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः, स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः, सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥17॥

अर्थ : (मुनीन्द्र !) हे मुनियों के इन्द्र **(त्वम्)** तुम **(कदाचित्)** कभी **(न अस्तम् उपयासि)** न अस्त होते हो **(न राहुगम्यः)** न राहु के द्वारा ग्रसे जाते हो और **(न अम्भोधरोदर-निरुद्धमहा-प्रभावः)** न मेघों के द्वारा आपका महाप्रभाव निरुद्ध होता है तथा **(युगपत्)** एक साथ **(जगन्ति)** तीनों लोकों को **(सहसा)** शीघ्र ही **(स्पष्टीकरोषि)** प्रकाशित करते हो **(इति)** इस तरह आप **(लोके)** इस संसार में **(सूर्यातिशायिमहिमा असि)** सूर्य से भी अधिक महिमा वाले हो।

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं, गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प-कान्ति, विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥18॥

अर्थ : (नित्योदयम्) हमेशा उदय रहने वाला **(दलित-मोह-महान्धकारम्)** मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला **(राहुवदनस्य न गम्यम्)** राहु के मुख के द्वारा ग्रसे जाने के अयोग्य **(वारिदानां न गम्यम्)** मेघों के द्वारा छिपाने के अयोग्य **(अनल्पकान्ति)** अधिक कान्तिवाला और **(जगत्)** संसार को **(विद्योतयत्)** प्रकाशित करने वाला **(तव)** आपका **(मुखाब्जम्)** मुखकमलरूपी **(अपूर्व-शशाङ्कबिम्बम्)** अपूर्व चन्द्रमण्डल **(विभ्राजते)** शोभित होता है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा , युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके, कार्यं कियज्जलधरै-र्जल-भार-नम्रैः ॥19॥

अर्थ : (नाथ!) हे स्वामिन्! **(तमःसु)** अन्धकार के **(युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु)** आपके मुखचन्द्र द्वारा नष्ट हो जाने पर **(शर्वरीषु)** रात में **(शशिना)** चन्द्रमा से **(वा)** अथवा **(अह्नि)** दिन में **(विवस्वता)** सूर्य से **(किम्)** क्या प्रयोजन है? **(निष्पन्नशालिवनशालिनि)** पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान **(जीवलोके)** संसार में **(जलभारनम्रैः)** पानी के भार से झुके हुए **(जलधरैः)** मेघों से **(कियत्)** कितना **(कार्यम्)** काम रह जाता है।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं , नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं , नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥20॥

अर्थ : (कृतावकाशम्) अवकाश को प्राप्त **(ज्ञानम्)** ज्ञान **(यथा)** जिस तरह **(त्वयि)** आपमें **(विभाति)** शोभायमान होता है **(एवं तथा)** उस तरह **(हरिहरादिषु)** विष्णु, शंकर आदि **(नायकेषु)** देवों में **(न 'विभाति')** शोभायमान नहीं होता **(तेजः)** तेज **(स्फुरन्मणिषु)** चमकते हुए मणियों में **(यथा)** जैसे **(महत्त्वम्)** महत्त्व को **(याति)** प्राप्त होता है **(तु)** निश्चय से **(एवं)** वैसे महत्त्व को **(किरणाकुले अपि)** किरणों से व्याप्त भी **(काचशकले)** काँच के टुकड़े में **(न 'याति')** नहीं प्राप्त होता।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥21॥

अर्थ : (नाथ!) हे स्वामिन्! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि **(दृष्टाः)** देखे गए **(हरिहरादयः एव)** विष्णु, महादेव आदि देव ही **(वरम्)** अच्छे हैं **(येषु दृष्टेषु 'सत्सु')** जिनके देखे जाने पर **(हृदयम्)** मन **(त्वयि)** आपके विषय में **(तोषम्)** सन्तोष को **(एति)** प्राप्त हो जाता है **(वीक्षितेन)** देखे गए **(भवता)** आपसे **(किम्)** क्या लाभ है ? **(येन)** जिससे कि **(भुवि)** पृथ्वी पर **(अन्यः कश्चित्)** कोई दूसरा देव **(भवान्तरे अपि)** जन्मान्तर में भी **(मनः)** चित्त को **(न हरति)** नहीं हर पाता।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान् , नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्त्र-रश्मिम्, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥22॥

अर्थ : (स्त्रीणाम् शतानि) स्त्रियों के शतक अर्थात् सैकड़ों स्त्रियाँ **(शतशः)** सैकड़ों **(पुत्रान्)** पुत्रों को **(जनयन्ति)** पैदा करती हैं, परन्तु **(त्वदुपमम्)** आप-जैसे **(सुतम्)** पुत्र को **(अन्या)** दूसरी **(जननी)** माँ **(न प्रसूता)** पैदा नहीं कर सकी **(भानि)** नक्षत्रों को **(सर्वाः दिशः)** सब दिशाएँ **(दधति)** धारण करती हैं, परन्तु **(स्फुरदंशुजालम्)** चमक रहा है किरणों का समूह जिसका ऐसे **(सहस्त्ररश्मिम्)** सूर्य को **(प्राची दिक् एव)** पूर्व दिशा ही **(जनयति)** प्रकट करती है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-, मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं , नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥23॥

अर्थ : (**मुनीन्द्र!**) हे मुनियों के नाथ ! (**मुनयः**) तपस्वीजन! (**त्वाम्**) आपको (**आदित्यवर्णममलम्**) सूर्य की तरह तेजस्वी, निर्मल और (**तमसःपुरस्तात.**) मोहान्धकार से परे रहने वाले (**परमं पुमांसम्**) परम पुरुष (**आमनन्ति**) मानते हैं वे (**त्वाम् एव**) आपको ही (**सम्यक्**) अच्छी तरह से (**उपलभ्य**) प्राप्त कर (**मृत्युम्**) मृत्यु को (**जयन्ति**) जीतते हैं इसके सिवाय (**शिवपदस्य**) मोक्ष पद का (**अन्यः**) दूसरा (**शिवः**) अच्छा (**पन्थाः**) रास्ता (**न अस्ति**) नहीं है।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्य-मसंख्यमाद्यं , ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं, ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥24॥

अर्थ : (**सन्तः**) सज्जन-पुरुष (**त्वाम्**) आपको (**अव्ययम्**) अविनाशी (**विभुम्**) विभु, (**अचिन्त्यम्**) अचिन्त्य, (**असंख्यम्**) असंख्य, (**आद्यम्**) आद्य (**ब्रह्माणम्**) ब्रह्मा, (**ईश्वरम्**) ईश्वर, (**अनंतम्**) अनन्त, (**अनङ्गकेतुम्**) अनङ्गकेतुम् (**योगीश्वरम्**) योगीश्वर (**विदितयोगम्**) विदित योग, (**अनेकम्**) अनेक, (**एकम्**) एक (**ज्ञानस्वरूपम्**) ज्ञानस्वरूप और (**अमलम्**) अमल (**प्रवदन्ति**) कहते हैं।

चारों अनुयोग उपयोगी

एक माँ जिनदर्शन के लिए मंदिर जा रही थी। साथ में उसका छोटा बेटा भी था। मार्ग में बेटे को देखकर नहीं चलने से पत्थर की ठोकर लग जाती है तो वह रोने लगता है। तब माँ गोद में लेकर उसे इस प्रकार से समझाती है- अरे! इतनी सी पीड़ा में रोता है। देख तेरी दीदी गिर गई थी। उन्हें कितना रक्त बहा था फिर भी क्या ऐसे रोई थी? दौड़कर घर पहुँच गई थी वह तो। बालक फिर भी पीड़ा को नहीं भूल पाता और रोना बंद नहीं करता। तब पुनः समझाती है कि तू बहुत उपद्रव करता है न इसलिए तुझे ठोकर लगती है। कैसे मुँह चिढ़ाता है दीदी को। कैसे पीटता है उसे। जो दूसरे को चोट पहुँचाता है उसे भी चोट लगती है। चुप हो जा, आगे किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाना। तो फिर कभी नहीं गिरेगा।

इस पर भी बालक रोना बंद नहीं करता। तब बदल जाती है उसके संबोधन की भाषा- अरे स्वयं देखकर तो चलता नहीं, गिरने पर रोता है। आगे सावधानी से चला कर फिर कभी चोट नहीं लगेगी। यह संबोधन भी यदि बालक को चुप नहीं करा पाता तो वह स्नेह से बालक के सिर पर हाथ फेरेगी और कहेगी- तू तो राजा बेटा है, तू तो गिरा ही नहीं। वह तो घोड़ा कूदा था। राजा बेटा क्या कभी गिरता है? क्या कभी रोता है? चल दौड़कर आगे चल।

बस यही चारों अनुयोग की कथन पद्धति है। संसार के सफर में कर्मोदय की ठोकर से पीड़ित भव्य प्राणी के लिए जिनवाणी रूपी माँ चार प्रकार से समझाती है। दीदी गिर गई थी पर रोई नहीं, दौड़कर घर पहुँच गई थी। यही तो कहा है प्रथमानुयोग में। असंख्य पात्रों के जीवन चरित्र यही तो दिशाबोध देते हैं कि पाप कर्मों की प्रतिकूलता में संक्लेशित होकर रोएँ नहीं, साहस के साथ अपने मार्ग पर चलते रहें।

दीदी को मुँह चिढ़ाता है, उसे पीटता है, तभी तो चोट लगती है। यही अभिप्राय है करणानुयोग का। जीव अच्छा-बुरा जैसा भी व्यवहार दूसरे के प्रति करेगा, कालान्तर में उसे वैसा ही अच्छा-बुरा फल भोगना पड़ेगा।

स्वयं देखकर चलता नहीं, गिरने पर रोता है। सावधानी से चला कर फिर चोट नहीं लगेगी। यही तो चरणानुयोग का उपदेश है कि पापाचरण से दूर रहना, अणुव्रत, महाव्रतों का पालन करना ही भविष्य के दुःखों से बचने का उपाय है। तू तो गिरा ही नहीं, वह तो घोड़ा कूदा था। राजा बेटा कभी गिरता ही नहीं। यह द्रव्यानुयोग की भाषा है। जीव तो ज्ञानमय और अजर-अमर ही है। वह न कभी जन्मता है न मरता है। न बँधता है न छूटता है। न गिरता है न उठता है। ये सारी अवस्थाएँ तो शरीर रूपी घोड़े की होती हैं।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

१. लोकाकाश किसे कहते हैं उसका आकार कैसा है ?

२. जम्बू द्वीप में स्थित सात पर्वत एवं छह नदियों के नाम क्या हैं ?

३. तीन वातवलय कौन से व कैसे हैं?

४. आ. ज्ञानसागर जी की शिक्षा कहां कैसे पूर्ण हुई ?

५. १६९ महापुरुषों के नाम बताइए?

६. कुलभूषण - देशभूषण मुनियों को कैसे वैराग्य हुआ था ?

७. नारकियों के शरीर की कोई तीन विशेषताएँ लिखो ?

८. सात नरकों के नाम एवं बिलों की संख्या बताएँ?

९. पृथ्वी कायिक एवं पृथ्वीकाय में क्या अंतर है ?

१०. तिर्यंचगति में जन्म लेने के कोई पांच कारण बताएँ?

११. स्वतंत्रता संग्राम में जैनों का क्या योगदान रहा ?

१२. भोग भूमि में मनुष्य कैसे होते हैं ?

१३. देवों के शरीर की कोई पांच विशेषताएं बतायें ?

१४. श्वेताम्बर पंथ की उत्पत्ति कैसे हुई ?

१५. चार अनुयोग मां के समान कैसे हैं ?

ब. श्लोक एवं छंदों को पूर्ण करें-

१. मुनिवन ..... पदार्थ।

२. अल्पश्रुतं ..... हेतु।

३. छवि ..... हरैं।

४. दिनरात ..... नशाएं।

५. विद्यासागर मीठे ..... संसारे ।

६. चित्तं ..... कदाचित्।

७. होकर सुख ..... दिखलावे ।

८. गम की ..... सम्बल दो॥

९. स्त्रीणां ..... जालम् ॥

स. श्लोक के अर्थ लिखो।

भक्तामर स्तोत्र - काव्य नं. ३, १२, २०

द. सही उत्तर चुनकर लिखो-

१७०, ८५०, १२, २४, ३ सागर, ७ सागर, ३०००, ७०००, भोजनांग, भाजनांग

१. कामदेव .....

२. शर्कराप्रभा .....

३. आर्यखण्ड .....

४. व्यंजन .....

५. जलकायिक .....

६. मलेच्छ खण्ड .....

७. बालुका प्रभा .....

८. आसनादि .....

९. वायु कायिक .....

१०. चक्रवर्ती .....

० अन्यत्र ग्रंथों से खोजें ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. लोकाकाश की लंबाई, चौड़ाई, क्षेत्रफल कहाँ पर कितना है ?

२. ढाई द्वीप का विस्तार कितना है चित्र सहित बताएँ? ३. सुमेरुपर्वत पर कितने कहां पर वन हैं। उनके क्या नाम हैं?

४. चौदह रत्न और नौ निधियाँ कैसी होती हैं?

५. ग्यारह रुद्र, नौ बलभद्र, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण के क्या-क्या नाम थे ?

६. बारह चक्रवर्ती कब हुए उनका नाम और वे मरकर कहाँ-कहाँ गए ?

७. सात नरक भूमियों के दूसरे नाम क्या हैं ?

८. नारकियों का जन्म किस प्रकार होता है ?

९. नारकी आपस में कैसे, क्यों लड़ते हैं ?

१०. मनुष्य जाति में कौन-कौन से दु:ख होते हैं ?

११. १०० इन्द्र कौन-कौन से हैं ?

१२. देवों में इन्द्र आदि की व्यवस्था का क्या स्वरूप है ?

१३. देवों में कैसा सुख-दुख पाया जाता है ?

१४. सोनगढ़ पंथ क्या है, कब उत्पन्न हुआ ?

१५. श्वेताम्बर साधु की चर्या कैसी होती है ?